EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ), ISSN: 2319-5045
Volume 12, Issue 2, July-December, 2023, Available online at: www.eduzonejournal.com

समकालीन कविता में दलित बोध (1990–2000)

मीना कुमारी[1], डॉ. मनोज कुमार कैन[2]

[1]शोधार्थी हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
[2]शोध निर्देशक हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

समकालीन दलित कविता ने कविता को कल्पना के आकाश सेयथार्थ की जमीन पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ वर्ग, जातिगत, असमानता, ऊँच–नींच और अस्पृश्यता की नींव पर खड़े समाज को मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से समान देखा, समझा और परखा जा सकता है। सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति, परम्पराएँ और व्यवस्थाओं को आदर्श माना जाता है, जिसका बोध हमें हमारे धर्म ग्रंथों से होता है। किंतु जब दलित बोध की बात आती है तो हमारे समाने अनेक प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। इस विषय में एन० एम० परमार कहते हैं कि ''साहित्य की परिभाषा भी हमारे यहां यह है कि 'सहितस्य भावः साहित्य' तो क्या ये साहित्य सबका कल्याण करता है या दलितों का कोई स्थान उसमें है? या हम कहते हैं।'''वसुधैव कुटुम्बकम' तो क्या सम्पूर्ण सृष्टि ही एक परिवार है तो उसमें भेदभाव क्यों ? चलिए यह तो सारी पृथ्वी से बात हुई, परंतु जब हम कहते हैं कि मानव जाति का कल्याण तो कौन–सी मानव जाति की हम बात करते हैं, जो उच्च हैं, जिनके पास साधन संपत्ति है ? जिनके पास संस्कार है ? या जो 'सत्यम शिवम्सुन्दरम्' में विश्वास करती है? या भारतीय मूल्यों और परम्पराओं में विश्वास करती है? इस परम्परा में दलितों को निम्न कोटि का माना गया है उन्हें भेदभाव पूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया है और कहा गया है– तुम अछूत हो और अछूत की तरह रहो।''[1]

दलित साहित्य को लेकर अनेक विचार प्रचलित हैं। दलित किसे कहा जाए ? दलित साहित्य किसे कहा जाए ? इन सवालों को लेकर उद्यपोह की स्थिति बनी रहती है। कुछ विद्वानों का मानना है कि साहित्य, साहित्य होता है फिर साहित्य दलितकैसे हो सकता है। परन्तु हमें यह बात अच्छी तरह समझनी होगी की साहित्य दलित नहीं होता, अपितु दलितों का साहित्य होता है। जिस प्रकार नाथों का साहित्य, सिद्धांतों का साहित्य, बौद्धों का साहित्य, जैन साहित्य आदि। भारत के गाँवो का देश कहा जाता है तथा गाँवों में दलितों के मोहल्ले व गलियाँ अलग होती हैं, उनके रीति–रिवाज, उनके पनघट–मरघट आदि सब अलग होते हैं, तो दलितों का साहित्य क्यों नहीं हो सकता? समकालीन कविता इसी दलित साहित्य की अभिव्यक्ति है। रणजीत सिंह ने दलितों के स्थान पर एक सवर्णो को रखकर देखने को कहा है। वे कहते हैं कि–

''या तुम्हीं होते मेरी जगह
एक भंगी के, एक चमार के, एकरण्डी के बेटे।
और पुकारे जाते अपने उस नाम से
भंगी की या रण्डी की औलाद कहकर
सोचो कैसा लगता तुन्हें।''

आजादी के पश्चात के काव्य पर नजर डलते हैं तो हमें दलित काव्य की एक लम्बी श्रृंखला दिखायी पड़ती है, किंतु इस श्रृंखला में वास्तविक गति 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में आरम्भहुई। 1990–2000 तक के दलित काव्य में वास्तविक दलित बोध के दर्शन हमें होते हैं। इस समय में दलित काव्य आन्दोलन के अन्तर्गत एक विशाल लेखक वर्ग तैयारहुआ जिन्होंने दलितों के प्रश्नों को प्रखर रूप से उठाया इसके साथ–साथ दलित साहित्य का वातावरण भीतैयार किया। इन रचनाकारों में सोहनपाल, सुमनाक्षर, श्यौराजसिंह बेचैन, भगवानदास, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, एन०आर० सागर,हरकिशन संतोषी, कँवल भारती, सुरजपाल चौहान, सुशील टाकभौरे, कुसुम वियोगी आदिमहत्वपूर्व हस्ताक्षर हैं।

समकालीन दलित कविता में सोहनपाल, सुमनाक्षर का बहुत बड़ा योगदानहै। उनकी कविताओं में दलित संघर्ष व दलित जीवन का बोध दोनों एक साथ मिलते हैं। उनका काव्य संग्रह 'सिन्धुघाटी बोल उठी' 1990 ई० में प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में53 कविताएँ हैं। इस काव्य संग्रह की विशेषता सोहनपाल, सुमनाक्षर की भाषा में समाहित है। इसकी भाषा विद्रोह की भाषा है जो समकालीन समय में एक दलित की भाषा होना लाजमी है। कवि दलितों का रखवाला रात्री के समय चाँद को मानता है, जो लोग दिन के उजालें में समाज के ठेकेदार व रखवाले बनने का ढोंग करते हैं वे लोग रात होते ही दलितों के घरों में घुसकर उनकी बहन, बेटियों, पत्नियों के शरीर से खेलते हैं। कवि कहता है कि–

''अरे ओ चन्दा
चमकतेरहना
मेरी अटरिया पर सारी रात
अँधेरा पड़ते ही
वे दलितों के घरों में लगाते हैं घात''[2]

समाज के उच्चवर्ग के लोग रात में दलित महिलाओं के शरीर से मनोरंजन करते हैं तो दिन में दलित पुरुषों पर अत्याचार करते हैं। सोहनपाल, सुमनाक्षर अपनी कविता 'अरे ओ सूरज' कविता में एक दलित स्त्री की प्रार्थना के बारे में बताते हैं। दलित स्त्री सूर्य से न उगने की प्रार्थना करती है कि जैसे ही सूर्य उदय होगा जमींदार उसके पति को जबरदस्ती पकड़ कर ले जायेगा। उससे पूरा दिन हल चलवाएगा और शाम को मजदूरी मांगने पर उस पर लाठी–डण्डे बरसाएगा–

''अरे ओ सूरज!
आज मत उगना मेरे आँगन में
वरना दिन निकलते ही मेरे आदमी को पकड़ ले जाएगा
दिन भर बेगार में हल चलायेगा
मजदूरी मांगने पर वह एवज में लट्ठ बरसायेगा।''[3]

इससे अधिक दलित जीवन की अभिव्यक्ति या दलित बोध ओर क्या हो सकता है दलित पुरुष चाहता है कि रातन हो क्योंकि रात होते ही जमींदार के लोग उसके परिवार की स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बनाएगें तथा स्त्री चाहती है कि दिन न निकले क्योंकि दिन निकलते ही जमींदार उसके परिवार के पुरुषों से बैल की तरह मेहनत करवाएगा और शाम को उनकी पीठ पर डंडे बरसाएगा।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का इसी समय प्रकाशित हुआ काव्य संग्रह 'सदियों का संताप' है जो पूर्ण रूप से दलित चेतना का काव्य है। इस काव्य संग्रह की कविता में भावुकता का कोई स्थान नहीं है। इस काव्य संग्रह की कविता में दलितविमर्श एवं चिंतन स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। इस काव्य संग्रह की पहली कविता 'ठाकुर का कुँआ' में वे कहते हैं कि–

''चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब का
तालाब ठाकुर का
भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरा खेत की
खेत ठाकुर का
कुँआ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेतखलिहान ठाकुर का
गली मोहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या
गाँव ?शहर ? देश ?''[4]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं समकालीन कविता में दलित जीवन का प्राण है। उनका कहना है कि गाँव, शहर और देश के सभी मूल संसाधनों पर उच्च वर्ग का अधिकार है। दलितों के पास तो याचना के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं है। दलितों की आँखों में शताब्दियों से करूण रस का स्थायी भाव ही दिखाई पड़ता है। दलितों को अन्यायसहने की आदत शताब्दियों से पड़ी हुई है उन पर किसी बात का कोई असर अब नहीं पड़ता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस बात को बहुत ही अच्छी प्रकार से समझ गए हैं। इसी नाते उन्होंने काव्य का सहारा लिया और दलितों में एक भाव बोध जगाने का प्रयास किया। वे कहते हैं कि–

''पथरीली चट्टान पर
हथौड़े की चोट
चिंगारी को जन्म देती है
जो गाहे बगाहे आग बन जाती है
आग में तपकर
लोहा नरम पड़ जाता है
ढल जाता है
मन चाहे आकार में
हथौड़े की चोट से
एक तुम हो
जिस पर किसी चोट का असर नहीं होता।''[5]

ओमप्रकश वाल्मीकि का मानना है कि जिस प्रकार पत्थर पर हथोड़ा मारने से चिंगारी उत्पन्न होती है उसी प्रकार दलितों पर जितना अधिक अन्याय होता है तुममें उतनी ज्यादा विद्रोही या क्रांति की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। जब तक तुम अपने अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं करोगे तब तक तुम अपनी इच्छा में नहीं ढल पाओगे, कोई और तुम्हें आकार देगा।

हरकिशन संतोष के 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक के आरम्भ में दो काव्य संग्रह 'कमलिनी' 1990 और 'वीणा के नूपूर' 1991 प्रकाशित हुए। इन काव्य संग्रहों की कविता में दलित भाव बोध की अभिव्यक्ति अनेक विषयों को लेकर की गई है जैसे– भूख, गरीबी, आरक्षण, असमानता, योग्यता, अधिकार आदि। 'संतोष' की कविताओं में समाज में समतालाने पर जोर दिया गया है उनका मानना है कि एक क्षेत्र या गाँव में रहने वाले दो व्यक्ति जो हमउम्र है एक पूरा दिन कमरतोड़ मेहनत करता है और दूसरा कुछ भी काम नहीं करता और दूसरा कुछ भी काम नहीं करता फिर भी मेहनत करने वाले व्यक्ति को दो समय का खाना भी नसीब नहीं होता और न ही समाज में सम्मान, किंतु होना उलटा चाहिए। यही संतोष का समता का दर्शन है। वे इस बात पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं–

''और कब तक चलेगा
यह जुल्म और सित्म का सैलाब
कि एक भाई भूखा सोये
दूसरा भाई पेट भर खाना फेंके।
एक भाई नभ को छूये
दूजा भाई जमीन में घंसे।''[6]

हरकिशन संतोष समाज में फैली विषमता पर व्यंग्य रूपी तीरों से वार करते हैं। आगे कवियोग्यता की बात करने वाले आरक्षण विरोधियों से दो टूक शब्दों में बहुत ही तार्किक संवाद करते हुए कहते हैं कि–

''योग्यता का एक प्रश्न चिह्न लगाने वाले
अगर तुम योग्य थे
क्यों तुमने पाकिस्तान बनवाया ?
तो क्यों तुमने सोमनाथ का मंदिर लुटवाया।''[7]

सूरजपाल चौहान का काव्य संग्रह 1994 ई० में 'प्रयास' नाम से प्रकाशित हुआ। जिसके नाम से लगता है कि वे दलितों में एक चेतना को जागृत करने का प्रयास करते हैं। वे दलितों को मनुष्य होने का आभास करवाते हैं।वे उन्हें अधिकारों के लिए प्रयास करने की हिम्मत देते हैं।

श्योराज सिंह बेचैन का काव्य संग्रह 1995 ई० में 'क्रौंच हूँ मैं' नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें वे कहते हैं कि आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण का आरम्भ बहेलियाँ द्वारा क्रौंच पक्षी केवध से किया है। इसी को आधार बनाकर बेचैन दलित वेदना को चित्रित किया है। इस काव्य में कवि का मानना है कि आदि कविता की शुरुआत क्रौंच पक्षी का वध देखकर हुई थी, किंतु मैं कवि होने को बावजूद वाल्मीकिके वंश से नहीं हूँ। मैं वाल्मीकि नहीं हूँ, मैं क्रौंच हूँ। यह काव्य संग्रह वास्तव में स्वानुभूति बनाम सहानुभूति के प्रश्न का उत्तर भी है। सहानुभूति का प्रतीक तथा सवर्ण लेखक दोनों का प्रतीक यहाँ वाल्मीकि है, जबकि अपनी पीड़ा का स्वयं अनुभव करने वाला 'क्रौंच' पक्षी दलितों का प्रतीक हैं।

'कुसुम वियोगी' का काव्य संग्रह 'व्यवस्था के विषधर' 1995 ई० में प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में वियोगी ने सामन्तवादी व्यवस्था, ब्राह्मवादी व्यवस्था, लोकतंत्र विरोधी व्यवस्था, राजनीति का दलित विरोधी चेहरा, जातिय व्यवस्था का उन्माद, दलित शोषण का इतिहास आदि के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। इस काव्य संग्रह में कुसुम वियोगी ने मंडल कमीशन का समर्थन कर सवर्ण लोगों कीदलित विरोधी मानसिकताको पाठक के सामने रखा है। कुसुम वियोगी मंडल कमीशन को ब्रह्मणवादीव्यवस्था को नष्ट करने वाला बताती है–

''मण्डल आयोग की सिफारिशों
क्या लागू हुई
समस्त वायुमंडल ही हिल गया
आग लगवा दी पूरे देश में
बचाने को ब्राह्मणी संस्कृति।''[8]

समकालीन कविता में दलित कवि एन० आर० सागर एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है उनका काव्य संग्रह1995 ई० में 'आजाद हैं हम' नाम से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में वे दलित मुक्तिकी बात करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० एन० एस० परमार, दलित उपन्यासों की वैचारिकी (सं०), पृ० 15, माया प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – 2019
2. सोनपाल सुमनाक्षर, 'सिन्धु घाटी बोल उठी', पृ० 53
3. वही, पृ० 78
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृ० 4, निहाल प्रकाशन, धर्मपुर, देहराइन
5. वही, पृ० 29
6. हरकिशन संतोष, वीणा के नूपुर, पृ० 31, साहित्य अकादमी दिल्ली, प्रथमसंस्करण– 1991
7. वही, पृ० 38
8. कुसुम वियोगी, व्यवस्था के विषधर, अपना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995